International Journal of Sanskrit Research 2017; 3(3): 188-190

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2017; 3(3):188-190
© 2017 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 08-03-2017
Accepted: 11-04-2017

प्रवीण शर्मा
शोधछात्रा, संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

Correspondence
प्रवीण शर्मा
शोधछात्रा, संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

वाक्यपदीयम् में वर्णित शब्दतत्त्व का व्यावहारिक पक्ष

प्रवीण शर्मा

प्रस्तावना

भारतीय व्याकरण दर्शन के क्षेत्रा में भर्तृहरि का वाक्यपदीय अत्यन्त प्रसिद्ध एवं समादृत है। व्याकरण दर्शन के क्षेत्रा में अद्वैत एवं विवर्तवाद की शुरुआत का श्रेय भर्तृहरि को ही दिया जाता है। वाक्यपदीय में भर्तृहरि की विलक्षण मौलिकता के दर्शन होते हैं।

वाक्यपदीयम् वाक्य तथा पद से सम्बन्धित ग्रन्थ है। वाक्यपदीय में वैयाकरण दार्शनिक दृष्टि से शब्द ब्रह्म उसकी शक्तियाँ, काल, दिव्फ, जाति, द्रव्य, ध्वनि, शब्दतत्त्व अर्थ, वाक्य एवं वाक्यार्थ जैसे भाषादर्शन विषयक विवेचन है। भाषागत व्यवहार केसे होते हैं, शब्द–तत्त्व का क्या स्वरूप है, शब्द और अर्थ का क्या सम्बन्द ा है, शब्द अर्थ की अभिव्यक्ति किस प्रकार करता है। शब्दतत्त्व विषय पर भर्तृहरि ने व्यापक चिन्तन किया है आधुनिक सन्दर्भ में भाषा में जिसे भाषा–तत्त्व शास्त्रा और भाषा–विज्ञान कहा जाता है वाक्यपदीय का विषय वही है।

वाक्यपदीय में वुफल तीन काण्ड है– प्रथम काण्ड को आगम तथा ब्रह्मकाण्ड भी कहते हैं द्वितीय काण्ड को वाक्य काण्ड तथा तृतीय काण्ड पद काण्ड या प्रकीर्णक के नाम से विख्यात है। प्रथम काण्ड में ग्रन्थकार ने अपनी आधरभूत मान्यताओं की घोषणा की है। वस्तुतः वाक्यपदीय का विषय वाक्यविवेचन प्रतीत होता है। इसे हम भर्तृहरि की निरपेक्ष दृष्टि से कहें तो यह वाव्फ विवेचन हुआ। उनकी दृष्टि में वाक्य वाव्फ का व्यावहारिक रूप है।

भर्तृहरि की प्रमुख धारणा शब्द–ब्रह्म है। प्रथम श्लोक में ही भर्तृहरि ने शब्दतत्त्व को ब्रह्म कहा है। भर्तृहरि ने जब शब्द को ब्रह्म पर उपमित कर ही दिया, तब वह ब्रह्म की समस्त मान्याओं को भी शब्द पर घटा कर दिखाते हैं।

यह 'शब्दब्रह्म' शब्द संज्ञा, क्रिया या पद के रूप में कोई इकाई नहीं है। शब्दतत्त्व का अर्थ वाव्फ तत्त्व ही है, इसे भर्तृहरि स्पष्ट करते हैं यदि वाव्फ का माध्यम न हो तो कभी किसी की भावनाओं को प्रकाशित होने का अवसर न मिल पाये, संसार को आपस में जोड़ने वाली और पारस्परिक व्यवहार की माध्यमभूता शक्ति भी यह वाव्फतत्त्व अर्थात् शब्दतत्त्व ही है।

शब्दतत्त्व चिन्तन की परम्परानुसार मीमांसा, सांख्य, न्याय में इस पर विवेचना हुआ है– फअथ गौरित्यत्रा कः शब्दः? गकारौकारविसर्जनीयाः इति भगवानुपवर्षः। श्रोत्राग्रहणे ह्यर्थे शब्दशब्दः प्रसि(ः। यहोवमर्थप्रत्ययो नोपपद्यते। अतो गकारादि व्यतिरिक्तोर्(न्यो गो शब्दो{स्ति, यतो{र्थ प्रतिपत्ति स्यात्।य

अर्थात्, शब्द उस ध्वनि समूह को नहीं कह सकते जिनके संयोग से तथाकथित शब्द रूप बनता है अपितु शब्द वह है जिससे किसी अर्थ की प्राप्ति हो।

पतञजलि ने शब्द की परिभाषा में अर्थ सम्प्रत्यय की बात कही है। फ्येनोच्चारितेन सास्नालार्घैन्ल कवुफदखुरविषाणिनां सम्प्रत्ययो भवति स शब्दः, अथवा प्रतीत पदार्थको लोके ध्वनिः स शब्दः।[1] जो भी ध्वनि समूह किसी भी अर्थ सम्प्रत्यय को देने में समर्थ हो वही शब्द है। यास्क ने भी शब्दों के निर्माण की प्रक्रिया उसके अर्थ के आधर पर की।[2] इसी परम्परा में कात्यायन ने फसि(शब्दार्थ सम्बन्द`य के द्वारा शब्द और अर्थ के सम्बन्द को नित्य माना है अर्थात् किसी ध्वनि से अर्थ प्रतीति नहीं होगी तो उसे शब्द नहीं मानेगें। वाक्यपदीयकार भर्तृहरि भी शब्द को अर्थ से अविच्छेद्य मानते हैं।[3]

वाक्यपदीय का आरम्भ ब्रह्म की चर्चा से होता है। इसीलिए इसे ब्रह्मकाण्ड कहा है। इसे आगम काण्ड अथवा आगमसमुच्चय भी कहते हैं। भर्तृहरि ने आगम अथवा शिष्ट परम्परा के प्रामाण्य पर बल दिया है। भर्तृहरि ने व्याकरण को सभी विद्याओं में श्रेष्ठ बताकर मोक्ष का द्वार कहा है।[4] जो मानव जीवन का चरम लक्ष्य है। मोक्ष का स्वरूप है ब्रह्म प्राप्ति। अपने अन्तरतम में अवस्थित आभ्यन्तर शब्द ब्रह्मस्वरूप ही है जिसकी प्राप्ति का साध्न भर्तृहरि व्याकरण को स्वीकार करते हैं।[5] इसीलिए ग्रन्थ के प्रारम्भ में ही ब्रह्म के स्वरूप का वर्णन किया है।

वाक्यपदीय में शब्द विषयक विवेचन 44वीं[6] कारिका से प्रारम्भ होता है अर्थ का वाचक शब्दतत्त्व बुद्धि में एक इकाई के रूप में स्थित है। भर्तृहरि के अनुसार अर्थ को लिए हुए एक इकाई के रूप में गृहीत यह बुद्धिस्त शब्द ही स्पफोट है। यह ध्वनियों का कारण भी है और इनके द्वारा अभिव्यक्त होकर अर्थ को भी प्रकट करता है। स्पफोट सिद्धांत के अनुसार कोई शब्द या वाक्य केवल व्यवस्थित ध्वनियों का समूह नहीं है अपितु एक अर्थवान इकाई है, एक अर्थवान इकाई के रूप में ग्रहीत पद या वाक्य ही स्पफोट अथवा शब्दतत्त्व है।

वाक्यपदीय में वर्णित शब्दतत्त्व का विवेचन करते हुए वाक्यपदीयकार ने कहा है कि शब्दशास्त्रा के विद्वान् उपादान शब्दों में दो प्रकार के शब्दों की सत्ता मानते हैं, जिनमें से एक शब्दों का कारण होता है और दूसरा अर्थ में प्रयुक्त होता है।[7] उपादान अर्थात् वाचक जिसके उच्चारण करते ही शब्द ही अवधरणा एवं स्वरूपार्थ की अवधरणा लक्षित हो। फउपादीयते येनार्थः्य अर्थात् जिससे अर्थ का ज्ञान हो वह उपादान है। अर्थात् शब्दतत्त्व जो उच्चारित शब्दों का उपादान कारण होता है, अर्थबोध के लिए उस अव्यक्त शब्दतत्त्व की ध्वन्यात्मक अभिव्यक्ति आवश्यक है। भर्तृहरि यहाँ शब्द के दो स्तर स्वीकार करते हैं। महाभाष्यकार ने पश्पशार्किं में भी जिनका संकेत दिया है– ध्वनि अथवा अभिव्यंजक शब्द और बुद्धिस्त अर्थात् प्रत्यायक शब्द।

व्यावहारिक दृष्टि से देखें तो वक्ता अर्थसम्प्रेषण के लिए शब्द का प्रयोग करता है। शब्द वक्ता के मनस में स्थित है, जिसे वैयाकरणों ने स्पफोट भी कहा है। यह शब्द निरवयव रूप से अर्थ से जुड़ा है। यदि उस निरवयव बुद्धिस्त शब्दतत्त्व को अर्थ का वाचक न माने तो ध्वनियों को वाचक मानना होगा, किन्तु ध्वनि अथवा वर्णों का समूह अर्थ का वाचक नहीं हो सकता। उदाहरणतया वूफप, सूप, यूप जैसे शब्दों से उफप शब्द ध्वनि में समान है किन्तु निरर्थक है। अतः स्पष्ट है कि एकात्मक शब्द ही अर्थ का वाचक है। बुद्धिस्त शब्दतत्त्व ध्वनियों को अपना माध्यम बनाता है और उनके द्वारा अभिव्यक्त होकर अर्थव्यक्त करता है।

शब्दतत्त्व एवं ध्वनितत्त्व इन दोनों में विद्वान् लोग वास्तविक भेद मानते हैं किन्तु वुफछ लोग इन्हें एक ही कहते हैं जिनमें बुद्धि के भेद से भेद मान लिया है।[8] शब्दतत्त्व व्यर्घेय है तथा ध्वनि तत्त्व व्य×जक है। भर्तृहरि दो प्रकार के शब्दों की बात करते हुए उन्हें जाति और व्यक्ति अथवा स्पफोट और ध्वनि कहते हैं। द्वौशब्दात्मनौ नित्यः कार्यश्चेति। अथवा जातिर्व्यक्तिश्चेति। अथवा स्पफोटोध्वनिश्च।

व्यवहार में बुद्धिस्त शब्दतत्त्व व्यक्त शब्दों का कारण होता है उदाहरणतया अरणियों में रहने वाली अग्नि प्रकाश उत्पन्न करने वाली अग्नि का कारण है इसी प्रकार बुद्धिस्थ शब्दतत्त्व वक्ता द्वारा अभिव्यक्ति की इच्छा होने पर व्यक्त शब्दों का कारण बन जाता है, और पिफर वह अपने स्वरूप को और अर्थ को दोनों को प्रकाशित करता है।[9] बुद्धिस्त शब्दतत्त्व को वक्ता जब व्यक्त करता है तो ध्वनियाँ इस अभिव्यक्ति का माध्यम बनती है। पुनः श्रोता भी इस शब्दतत्त्व को एक ईकाई के रूप में ग्रहण करता है तब यह शब्द अर्थ के सम्प्रेषण का माध्यम बनता है।

वस्तुतः अव्यक्त स्पफोटरूप शब्द अर्थात् शब्दतत्त्व को ध्वनि या उच्चारित शब्दों का उपादान कारण माना गया है। बुद्धि में स्थित वह शब्दतत्त्व अपनी अभिव्यक्ति हेतु ध्वनि उत्पन्न करता है उन ध्वनियों से शब्द निर्माण होता है जो अर्थ प्रकट करते हैं। द्वितीय क्रम में श्रोता के लिए उच्चारित शब्द श्रोता के कान में पड़कर बुद्धि में स्थित स्पफोट रूप शब्दतत्त्व को अभिव्यक्त करते हैं जो अर्थबोध कराता है। व्यवहार की दृष्टि से देखे तो अव्यक्त शब्द तत्त्व उपादान कारण है जिससे उच्चरित शब्द उत्पन्न होते हैं। ध्वनि या वर्णों में व्यक्त शब्दों का प्रयोग अर्थबोध के लिए होता है।

अव्यक्त शब्दतत्त्व तथा ध्वनि में व्यर्घेय–व्य×जक **सम्बन्द** है। ध्वनि व्य×जक है जिससे स्पफोट रूप शब्दतत्त्व की अभिव्यक्ति होती है। भर्तृहरि निमित्तभूत शब्द और प्रयुज्यमान शब्द के अन्तः एवं बाह्य रूप को स्पष्ट करते हुए इनको एक ही आत्मा के दो पा श्र्भ अर्थात् अभिन्न स्वीकृत करते हैं।[10] निमित्त भूत शब्दतत्त्व का ग्रहण बुद्धि से होता है तथा प्रयुज्यमान शब्द का ग्रहण कर्ण से। इसी आधर पर अभिन्नता में भिन्नता ग्रहण कर ली जाती है। दोनों अभेद तात्विक है और भेद व्यवहारिक है।[11] भर्तृहरि जानते हैं कि व्यावहारिक दृष्टि से अर्थ भावना के द्योतन या प्रत्यायन में समर्थ हुए बिना शब्द के बाह्याकार का कोई महत्त्व नहीं रह जाता। शब्द का जीवन अर्थ द्योतकता पर ही है। जब तक शब्द उस अर्थभावना से **सम्बन्ध** नहीं हो जाता तब तक वह सत्ताहीन सा प्रतीत होता है।

शब्दतत्त्व के स्पष्टीकरण में भर्तृहरि कहते हैं जिस प्रकार ज्ञान स्वतः प्रकाश्य भी है और ज्ञेयवस्तु का प्रकाशक भी। अर्थात् वह अपने स्वरूप को भी प्रकाशित करता है और ज्ञेय वस्तु का भी बोध कराता है। उसी प्रकार स्पफोट रूप शब्दतत्त्व अपने स्वरूप को भी प्रकाशित करता है और पदार्थ का भी बोध कराता है।[12]

उस निरवयव मूल शब्दतत्त्व से व्यक्त क्रमवान ध्वनि वर्ण पद तथा वाक्य के विकास के सिद्धांत के लिए पक्षी के अंडे में निरवयक्त रूप में रहने वाले तत्त्व **धीरे-धीरे** सावयव रूप में विकसित होने का उदाहरण दिया है। पक्षी के अण्डे में रहने वाले क्रमरहित निरवयव एक तत्त्व की तरह ब्रह्माण्ड में शब्दतत्त्व विद्यमान है। जो अखण्ड अरूप और क्रमयुक्त है। मनुष्य की बुद्धि में भी वह अखण्ड और व्यापक स्पफोट सदा विद्यमान रहता है। अर्थात् अव्यक्त शब्द खण्ड में जब वृत्ति उत्पन्न होती है जिसका स्वरूप क्रिया है तब वह ध्वनि के रूप में उच्चारित होकर व्यक्त होता है।[13]

निष्कर्ष

भारतीय व्याकरण दर्शन परम्परा में भर्तृहरिकृत वाक्यपदीय भाषा–विज्ञान एवं भाषा–तत्त्व की अपूर्व रचना है जो श्रुतिवाक्यों से स्पष्ट है। व्यावहारिक दृष्टि से हमारे प्रतिदिन के अनुभव के सन्दर्भ में यह स्पष्ट समझा जा सकता है कि शब्दतत्त्व विभिन्न अर्थों को प्रकाशित करने वाला सर्वोपरि प्रकाश है। यह सर्वथा निर्विवाद तथ्य है कि हमारी चिन्तनधरा में आने वाला प्रत्येक भाव एक व्यक्त शब्दतत्त्व के द्वारा ही निर्धरित होता है।[14]

वस्तुतः व्यावहारिक जगत् में अर्थ को प्रकाशित करने में शब्दतत्त्व का विशिष्ट महत्त्व है। एक अशिक्षित चरवाहा भी अपने पशुओं में भेद करने के लिए शब्द का ही प्रयोग करता है। शब्द के द्वारा ही एक ही द्रव्य से बने हुए पदार्थों में परस्पर भेद किया जाता है। समस्त सामाजिक व्यवहार व संप्रेषण अन्ततः शब्दतत्त्व अथवा वाव्फ पर ही आधरित रहता है। केवल सामाजिक व्यवहार में लक्षित बाह्य चेतना ही नहीं अपितु हमारी अन्तश्चेतना भी। अर्थात् हमारी सुखात्मक, संज्ञानात्मक अनुभूतियाँ अपने अनुरूपी शब्द रूपों से पृथव्फ कर देने पर दुर्बोध हो जाती है। हमारी बुनियादी भावनाओं और धरणाओं का सम्प्रेषण भी शब्दों की सहायता के बिना सम्भव नहीं।

अतः वाक्यपदीय ने शब्दतत्त्व के व्यावहारिक पक्ष के सन्दर्भ में स्पष्ट कहा है कि संसार में ऐसी कोई प्रमा या ज्ञान नहीं जो शब्द से सम्ब(हुए बिना सम्भव हो। प्रत्येक ज्ञान शब्द में अनुषक्त रहता है।[15]

पाद–टिप्पणी

1. महा. 1.1.1
2. अर्थ नित्यः परीक्षेत – नि. 1.1.3
3. नित्या शब्दार्थ **सम्बन्द** ास्तत्रााम्नाता महर्षिभिः। – वा. 1.23
4. तद् द्वारमपवर्गस्य वाघ्मलानां चिकित्सितम्।
   पवित्रां सर्वविद्यानामधिविद्यं प्रकाशते।। – वा. 1.14
5. अर्थ प्रवृत्ति तत्त्वानां शब्दा एव निबन्धनम्।
   तत्त्वावबोधः शब्दानां नास्ति व्याकरणादृते।। – वा. 1.13
6. द्वावुपादान शब्देषु शब्दः शब्द विदोविदुः।
   एकोनिमित्तं शब्दानामपरो(र्थे प्रयुज्यते।। – वा. 1.44
7. वही, – वा. 1.44

8. आत्मभेदस्तयोः केचिदस्तीत्याहुः पुराणगाः।
   बुद्धिभेदादभिन्नस्य भेदमेके प्रचक्षते।। – वा. 1.45
9. अरणिस्थं यथा ज्योति प्रकाशान्तरकारणम्।
   तद्वच्छब्दो{पि बुद्धिस्थ श्रुतीनां कारणं पृथव्फ।। – वा. 1.46
10. आत्मभेदस्तयोः केचिदस्तीत्याहुः पुराणगाः।
    बुद्धिभेदादभिन्नस्य भेदमेके प्रचक्षते।। – वा. 1.45
11. व्यवहाराय मन्यन्ते शास्त्राार्थप्रक्रिया यतः।
    शास्त्रोषु प्रक्रियाभेदैरविद्यै वोपवर्ण्यते।। – वा. 2.232
12. आत्मरूपं यथा ज्ञाने ज्ञेयरूपं च दृश्यते।
    अर्थरूपं तथा शब्दे स्वरूपं च प्रकाशते।। – वा. 1.50
13. आण्डभावमिवापन्नो यः क्रतु शब्द संज्ञकः।
    वृत्तिस्तस्य क्रियारूपा भागशो भजते क्रमम्।। – वा. 1.51
14. तस्मादर्थ विधसर्वाः शब्दमात्राः सुनिश्चिताः। – वा. 1.120
15. न सो{स्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमादृते।
    अनुवि(मिव ज्ञानं सर्वं शब्देन भासते।। – वा. 1.124